(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ
M.Sc., Ph.D.

वर्ष-27 मई-2017 अंक-5

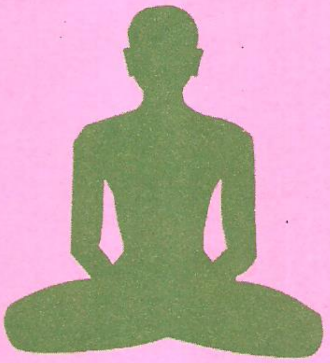

गुरु वही; जो भक्तों को सन्मार्ग दिखाए

संसार में दो ही शक्तियां कार्य करती हैं-
एक गुरु का हृदय और दूसरी भक्त की श्रद्धा।
यह पूर्ण होने पर ही, मानव का कल्याण संभव है।
जो बात दवा भी ना कर सके, वो बात दुआ से पूरी होती है।
गुरु से परे कोई तत्व नहीं है -
वे ही सब के परम आश्रय हैं, सब के शरण स्थल हैं।
जहां भी सद्‌गुरु का निरंतर चिन्तन मनन एवं स्मरण होता है-
वहां वे सदा संग होते हैं।
गुरु उसे कहते हैं, जो गुर बता दे-अर्थात् तरीका बता दे।

(संत श्री सुभाष बापू-सहारनपुर)

प्रकाशक
ध्यान सत्संग सभा
पंजीकरण संख्या : 280/2013
हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346
Facebook : dhyansatsangsabha@gmail.com

आत्म संतुष्टि ही परम सुख का अनुभव

- श्रीमती गुंजन गोयल (मो० 098962-69674)

मनुष्य की चाहना का कोई अंत नहीं है। हम तो भगवान् का ध्यान, भजन, प्रार्थना भी - उससे कुछ मांगने के लिए ही करते हैं। जैसे ही एक चाहना पूरी हुई-दूसरी सामने खड़ी हो जाती है। एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी और ये क्रम जीवन भर चलता ही रहता है-परन्तु न तो तमन्नायें पूरी होती हैं और न ही संतुष्टि मिलती है। जीवन यात्रा पूरी हो जाती है, परन्तु इच्छायें अधूरी रह जाती हैं। जब मनुष्य को आत्म संतुष्टि होगी, कोई चाहना नहीं रहेगी - तभी वो मोक्ष को प्राप्त कर पायेगा।

उदर समता मांगलि ले, ताको नाहीं दोष।

कहें कबीर अधिका गहै, ताकी गति न मोष॥

यदि उदर हेतु भीख मांगनी पड़े-तो कोई बात नहीं,

अर्थात् पेट की भूख मिटाने हेतु मांगी गई भीख से कोई दोष नहीं लगता।

किन्तु यदि कोई इस पूर्ति के बाद भी,

अधिक प्राप्ति के लालच में भीख मांगता है-तो गलत बात है।

कबीर दास कहते हैं कि ऐसे लालची लोगों को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती।

हम जीवन भर सांसारिक वस्तुओं को कमाने में बिता देते हैं और हाथ हमारे कुछ नहीं लगता। इतनी सुख सुविधाएं होने के बाद भी बेचैनी सी घेरे रहती है।

एक बार भगवान बुद्ध की सभा जुड़ी हुई थी-

भक्त यह जानना चाहते थे कि इस संसार में वास्तव में सुखी कौन है?

जब यह प्रश्न भगवान् बुद्ध के सामने आया-तो उन्होंने कहा -जो अंतिम पंक्ति में फटे पुराने कपड़ों में बैठा है-वास्तव में वही सबसे ज्यादा सुखी है। सभी हैरान हो गये। ऐसा कैसे हो सकता है? जिस मनुष्य के पास, तन ढकने को कपड़े नहीं, खाने को दो वक्त की रोटी का भरोसा नहीं-वो सबसे ज्यादा सुखी, भला कैसे हो सकता है? बुद्ध ने सबकी शंकाओं को दूर करते हुए कहा-

जिसको कुछ पाने की कामना नहीं, चाहना नहीं

और मन में कोई आकांक्षा नहीं-वही सुखी है।

वरना तो सभी, अपने बनाये आकांक्षाओं के जाल में ही

फंसते चले जा रहे हैं।

जिस प्रकार, एक मकड़ी अपनी सारी उम्र जाल बुनने में, उसी में फंसी हुई रह जाती है और अंत में उसी में दम तोड़ देती है-मनुष्य भी अपनी आकांक्षाओं में जीवन भर फंसा रहता है-कभी निकल ही नहीं पाता। बुद्ध ने कहा-

सुखी वही है-जिसके मन में कोई आकांक्षा नहीं है।

अपनी बात की पुष्टि करवाने के लिए, वहां सभा में सबसे पूछा गया-

किसी ने कहा धन, किसी ने कहा संतान चाहिए। कोई बोला खुद का मकान, कोई कहता - ऊँचा पद; हर एक के मन में कोई न कोई कामना थी। जैसे जैसे कामना बढ़ती चली जाती है-मन की बेचैनी भी बढ़ती है और जिस के मन में कुछ भी कामना है-उसका स्वामित्व वहीं तक सीमित है। जिसके पास एक लाख है- वो लखपति है; जिसके पास करोड़ है-वो करोड़पति।

परन्तु जिसके मन में कोई कामना व चाहना नहीं है-

वो तो सर्वस्व का स्वामी है।

उसके स्वामित्व की तो कोई सीमा ही नहीं है।

अगर प्रभु कृपा से हमें आत्म संतुष्टि की अनुभूति हो गयी-तो हमारी कोई कामना व लालसा बचेगी ही नहीं। आत्म संतुष्टि से ही; परम सुख का अनुभव होगा - अन्यथा तो हम अपनी जीवन यात्रा-अपनी कामनाओं के अधीन हो कर ही पूरी कर लेंगे और यह क्रम, जीवन भर और जन्म जन्मान्त्र तक चलता ही रहेगा।

गोधन, गजधन बाजि धन और रतन धन खानि।

जब आवत संतोष धन, सब धन धुरि समानि॥

गाय, हाथी, घोड़े और रत्नों के धन की खान ही क्यों न हो - परन्तु जब व्यक्ति में संतोष धन आ जाता है - तो बाकी सब धन, धूल के समान हो जाते हैं।

(रामचरित मानस)

24.7.1893
17.5.1970

परम गति की प्राप्ति

पंडित श्री ऋषिराम

आध्यात्मिक जीवन में बुद्धि से ऊपर जाना होगा।

पढ़ने और केवल मात्र मानने से, कुछ नहीं होगा।

पढ़ना और मानना, बुद्धि के स्तर तक ही सीमित है।

जीवात्मा का स्थान इससे ऊंचा और असीम है।

गीता (15.6) ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है :

न तद्भासयते सूयो न शशांकोन पावकः।

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परम मम॥

जिसमें न सूर्य प्रकाश चन्द्र न आग ही का काम है।

लौटे न जन जिसमें पहुंच मेरा वही परमधाम है॥

Supreme state that I have explained to thee,

Is illumined abode that belongs to Me,

Gets no light from sun, moon or fire,

One returnth not from the blissful state entire.

उस स्वयं प्रकाशमय परम पद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा ओर न अग्नि ही प्रकाशित कर सकते हैं तथा जिस परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे संसार में नहीं आते हैं-वही मेरा परम धाम है। यह वह स्थान है; जहां पर जाकर मन और वाणी वापिस नहीं आते और मनुष्य 'परमगति को प्राप्त' होता है। इसलिए यह निश्चित है कि जहां मन और बुद्धि कार्य कर रहे हैं-वहां जीवात्मा का अनुभव नहीं। आत्मिक जीवन हुए बिना, जीवात्मा का अनुभव सम्भव नहीं है। **प्राचीन ऋषि मुनि भी इसी जीवात्मा को जानना चाहते थे। वे कहते थे कि**

''उठो जागो और बढ़ते रहो-जब तक कि लक्ष्य को प्राप्त न करलो।''

अध्यात्म का मार्ग' तलवार की धार पर चलने के समान है

किन्तु जीवन की सफलता, 'आनंद की पराकाष्ठा' ही है।

जिसने जीवात्मा का दर्शन कर लिया, उसका जीवन सफल हो गया।

केवल मानने से कुछ नहीं होगा-अनुभव से ही बन्धन कटेंगे। ❑

12.1.1918
8.2.2008

चरम जीवन सत्ता

महर्षि श्री महेश योगी

पुष्प की सत्ता का आधार 'विशुद्ध सत्ता' - अर्थात् विशुद्ध चिति है। इसका निष्कर्ष यह निकला कि जिस वस्तु का भी अस्तित्व है-उसका आधार 'विशुद्ध चिति' है। वह जीवन की आन्तरिक सत्य वस्तु है। जब सभी वस्तुओं का लोप हो जाता है- तब अकेली 'चरम जीवन सत्ता' ही शेष रहती है। पुष्प की अभिव्यक्त सत्ता-उसका विशिष्ट रूप, रंग, गंध तथा स्पर्श हैं और; ये रूप, रंग आदि 'अभिव्यक्त सत्ता' के भिन्न भिन्न स्तर हैं। पुष्प की चरम जीवन सत्ता तो विशुद्ध सद्वस्तु ही है और; यह वही सद्वस्तु है, जो 'ध्यान' में हम उस समय अनुभव करते हैं-जब मंत्र का लोप हो जाता है।

विश्लेषण के सामान्य स्तर पर हम कह सकते हैं कि समस्त पुष्पदलों की चरम सत्यता 'रस' (SAP) है-वह रस, जिसके उपादान से गुलाब के सब पुष्पदल बने हुए हैं। देखिये-रसबिन्दु में न रंग है, न रूप है, न गंध है और न स्पर्श है। अतएव यह समस्त रंग-रूप-गंध और स्पर्श, उस क्षेत्र की सृष्टि है-जो इन सबका आधार है। रस ही इन सबका आधार है। अतः रस ही इन समस्त अभिव्यक्तियों की अनभिव्यक्त सत्यता है। अतएव चरम जीवन सत्ता 'एक' ही है और इस 'एक' की अभिव्यक्ति, 'अनेक' में होती है।

सृष्टि में जो कुछ भी है-उस प्रत्येक वस्तु की चरम जीवन सत्ता, बस 'एक' ही है।-वही विशुद्ध सत्ता (चिति); विशुद्ध सत्ता जीवन की आधार शिला है। वह एक है। उस एक अनभिव्यक्त चरम सत्ता पर ही, जीवन की अभिव्यक्त अनेकानेक सत्तायें आधारित हैं।

देखिये-भावातीत ध्यान शैली में हम क्या करते हैं?

हम चरम जीवन सत्ता का अनुभव करते हैं-वह चरम जीवन सत्ता, जो सबसे परे और सबसे पृथक है। जो वस्तु सबसे परे होती है-उसे हम 'भावातीत' कहते हैं-यह 'भावातीत सत्ता' जीवन के समस्त सविशेष (व्यावहारिक) क्षेत्रों के परे है। ❑

(1936-2009)

जीवन

✍ डॉ० शम्भूनाथ

शरीर सृष्टि के दो भागों में विभाजित है- इन्द्रिय जगत और पराजगत।

अन्दर का भाग फिर, दो भागों में विभाजित हो जाता है -

पराजगत और 'परा से पराजगत'।

'परा से पराजगत', निर्गुण निराकार तत्व का समुद्र है। यही ब्रह्म है; ब्रह्म मात्र एक है। एक से ही अनेक हैं। एक ने अपने को, अनेक में प्रकट करने के लिए, परा और 'परा से परा' के बॉर्डर पर चौरासी लाख (अनन्त) जड़ों की उत्पत्ति की। ये जड़ें भी निर्गुण निराकार हैं। इन्हें योनि भी कहते हैं। योनि का अर्थ है-उत्पत्ति करने वाला। इन जड़ों में जब ब्रह्म की शक्ति प्रवेश करती है-तब इनके अस्तित्वों की उत्पत्ति होती है। इन चौरासी लाख जड़ों में 'मन' भी एक जड़ है। मात्र मन में जब ब्रह्म की शक्ति पिरोती है-तब मन में ब्रह्म के तीन गुण; सत-चित-आनन्द उभरने लगते हैं। जहां ये तीन गुण हैं-वहीं मन गुणवान है।

गुणवान मन ही; जीवात्मा है।

आत्मा एक है और जीवात्माएं अनेक हैं।

ब्रह्म और आत्मा पर्यायवाची हैं।

सृष्टि में केवल जीवात्मा-अर्थात् गुणवान मन, सृष्टि के 'सूक्ष्मतम से स्थूलतम' तक विचरण करने की शक्ति, उत्पन्न कर सकता है।

मन के विचरण करने का क्षेत्र, इस पर निर्भर करेगा कि वह अपने आन्तरिक जगत में विचरण के अभ्यास (Meditation) द्वारा,

कितनी शक्ति पिरो सकता है?

जिसमें शक्ति बहुत कम है-वह मात्र निद्रा के समय आन्तरिक जगत में विचरण करता है और जागृत अवस्था में मात्र, इन्द्रिय जगत में विचरण करता है।

ऊपर हमने देखा कि 'एक', अनेक रूपों में चौरासी लाख जड़ों के माध्यम से प्रकट हुआ। प्रकट होने के लिए, उसने अलग अलग आकार-अर्थात् शरीर और गुण उत्पन्न किए-अर्थात् शरीर की रचना, चौरासी लाख में से कुछ जड़ों के माध्यम से भी सम्भव है। मनुष्य का शरीर, वह शरीर है-जिसमें समस्त चौरासी लाख जड़ों का प्रयोग हुआ-अर्थात् चौरासी लाख योनियों द्वारा जब तक ब्रह्म की शक्ति प्रकट नहीं होगी-तब तक मनुष्य के शरीर की रचना नहीं होगी-भले ही किसी और शरीर की रचना हो जाए। जिस शरीर में मन है-वह शरीर, किसी न किसी जीवात्मा ने धारण किया। समस्त जीवात्माओं में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है :

बड़े भाग मानुष तन पावा।

सुर दुर्लभ सदग्रंथहिं गावा॥

कोई ऐसा नहीं हो सकता-जिसका मन इन्द्रियों में विचरण ही न करे। मन, पराजगत का निवासी है। इन्द्रिय जगत में 'मन' मात्र मेला देखने आया है। इस मेले में सुख-अर्थात् इन्द्रिय जगत का सुख भोगने में, वह इतना रम गया कि वापिस जाने का रास्ता ही भूल गया। जो भी अपने घर का रास्ता भूलता है-वह परेशान ही होता है और परेशानी उसे थका देती है; थककर वह सो जाता है। सोते ही मेला देखने वाला 'मैं' नहीं रहता।

यही आत्म समर्पण है।

आत्म समर्पण होते ही; आत्म शक्ति उसे आत्म क्षेत्र में ले जाकर, उसकी समस्या-अर्थात् कर्म करने की शक्ति, फिर से प्रदान करके, मेले में वापिस भेज देती है-जिससे कि यदि मेला देखने से जीवात्मा का मन न भरा हो, तो वह और मेला देख ले।

जीवात्मा, 'आत्मा का क्षेत्र' में निद्रा के समय गया,

इसीलिए उसने शक्ति को पाया-

परन्तु उसे रास्ते का ज्ञान नहीं हुआ।

इस तरह का जीवन, समय बीतने के साथ साथ अधिक दु:खदायी होने लगता है और वह ईश्वर को मन से याद करने लगता है कि ईश्वर उसे सुख का रास्ता दिखलाए।

शरीर के अन्दर का भाग, हर उस चीज का कोश है-जो बाहर प्राप्त होता है।

प्राप्त मात्र, मन को होना है।

मन की दो अवस्थाएं हैं-जागृति अवस्था और सुषुप्ति अवस्था।

जीवन में मनुष्य, केवल उस वस्तु की कमी महसूस करता है-जिसे वह आन्तरिक जगत में विचरण (Meditation) करके प्राप्त करने में सिद्ध नहीं हो पाता। प्राप्त करने की शक्ति, मन की जागृति या चेतना बढ़ने के साथ साथ बढ़ती ही जाती है और सुषुप्ति बढ़ने के साथ साथ चेतना कम होती ही जाती है। मन के पास, पाने के लिए दो तरह की शक्तियां हैं-दूसरे शब्दों में दो तरह की शक्तियों से सम्बन्धित-दो तरह के कर्म हैं। कर्म के बिना, किसी को कुछ भी नहीं मिलता।

ये कर्म ही बाहर के कर्म और अन्दर के कर्मों द्वारा जाने जाते हैं।

कर्म मात्र मन करता है। बाहर के कर्म, मन स्वयं नहीं कर सकता – या ये कहें कि उसे बुद्धि और इन्द्रियों की मदद लेनी ही पड़ती है। ऐसे कर्मों की शक्ति को 'करनी की शक्ति' कहते हैं।

जब मन, बुद्धि और इन्द्रिय से अलग हो जाता है-तब वह स्वयं कर्म करता है और उस समय, उसे स्वयं नहीं मालूम रहता कि उसे क्या करना है? क्योंकि वहां 'करना', होता ही नहीं। उस समय 'होनी की शक्ति', मन को आन्तरिक जगत में विचरण कराकर आवश्यक कर्म करा लेती है। उस समय मनुष्य, अपनी कामनाओं को महसूस करने की अवस्था में नहीं रहता-क्योंकि उसका 'मैं' ही नहीं रहता। यही कारण है कि ऐसे ही कर्मों को 'निष्काम कर्म' कहते हैं और गीता में ऐसे कर्मों को सर्वश्रेष्ठ कर्म कहा गया है।

साधक, भली भांति जानते हैं कि सृष्टि अनन्त लोकों से मिलकर बनी है।

सारे लोक शरीर के बाहर हैं।

मात्र ब्रह्मलोक शरीर के अन्दर है।

ब्रह्मलोक ही; संसार की हर इच्छा पूरी करने वाला कोश है। मन, ब्रह्मलोक की पृथ्वी है। पिछले कर्मों के आधार पर, मन में समायी हुई इच्छाएं- ब्रह्मलोक के पृथ्वी के बीज हैं। मन, मात्र जागृति अवस्था में कुछ प्राप्त कर सकता है-बढ़ती हुई सुषुप्ति अवस्था में नहीं। अलग अलग क्षेत्र की जागृति, मात्र उन क्षेत्रों के कर्म से उत्पन्न होती है। अत: आन्तरिक कर्म, मात्र आन्तरिक जागृति उत्पन्न करेंगे। यह आन्तरिक जाग, ब्रह्मलोक की पृथ्वी के बीजरूपी इच्छाओं के वृक्ष के खाद का कार्य करती है। इस तरह से समझना कितना आसान है कि

आन्तरिक जगत की इच्छाओं के क्षेत्र में मन का विचरण,

अलग अलग इच्छाओं की पूर्ति से सम्बन्धित वृक्ष-

मनुष्य के जीवन को फल प्रदान करने में सक्षम हैं।

यदि इच्छाएं, इन्द्रिय जगत के धन की होंगी-तो मनुष्य के जीवन में उस तरह के धन आने की परिस्थितियां, 'होनी की शक्ति' के माध्यम से मात्र परमात्मा उत्पन्न कर देगा और ये परिस्थितियां ही, ब्रह्मलोक के वे वृक्ष हैं-जिनमें ब्रह्मलोक के फलरूपी मनुष्य की इच्छाओं की पूर्ति मिलती हैं। यदि इच्छाएं आन्तरिक सुख शान्ति की होंगी-तो फल शरीर के बाहर न मिलकर, मनुष्य को अपने में ही प्राप्त हो जाएगा।

साधकगण, भली भांति जानते हैं कि जिस क्षेत्र में कर्म होता है-उस क्षेत्र की चेतना जागृत हो जाती है और हमारी बाहर का धन अर्जित करने की इच्छा पूरी हो जाती है। पढ़ाई के क्षेत्र द्वारा, या सरकारी नौकरी की प्राप्ति के द्वारा, या राजनीति में आकर; या वकील, डॉक्टर, इंजीनियर; या व्यापार के क्षेत्र में मेहनत का कर्म करके-इन क्षेत्रों की चेतना उभार कर-हम धनवान बन जाते हैं। इसी प्रकार मात्र तीन आरम्भिक चेतनायें-हमें बाहर का सब कुछ प्रदान करने में सक्षम रहती हैं। ऐसा बहुधा देखा जाता है कि मात्र बाहर का धन-मनुष्य को जीवन की खुशियां, शान्ति या संतोष देने में सक्षम नहीं हैं। कारण यह है कि हम इस माया में फंस जाते हैं-कि मात्र बाह्य जगत का धन, हमारे जीवन को सुखी बना सकता है।

जीवन सत्य यह है कि खुशी; पराजगत की पृथ्वी के बीच का वह

फल है-जो इन्द्रिय जगत में नहीं फलता।

अतः जब तक हम खाद रूपी 'परा चेतना' उत्पन्न करने में सफल नहीं होंगे-तब तक बाह्य जगत के सारे धन, जीवन को सुखी बनाने में असमर्थ रहेंगे। जीवन, दो भागों में बंटा हुआ है-इन्द्रिय जगत और पराजगत।

इन्द्रिय जगत, मायावी जगत कहलाता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य को दिखता यह है कि; परमात्मा ने पांच ज्ञानेन्द्रियों की रचना, मन को सुख का भोग कराने के लिए की है। परन्तु सत्य यह है कि इन्द्रिय सुख ही; जीवन के सारे दुःखों के स्रोत हैं।

जीवन को कष्ट पहुंचाने वाले ही; राक्षस कहलाते हैं। पांच ज्ञानेन्द्रियों के सुख की प्राप्ति के लिए, हम पांच कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म करते हैं-अर्थात् इन पांच कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म भी, पांच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा भोग को ही, मदद करने वाले हैं-दूसरे शब्दों में ये जीवन के कष्ट बढ़ाने में भागीदार हैं।

इस प्रकार हमारे जीवन में दस राक्षस उत्पन्न हो जाते हैं।

ये इन्द्रियां बुद्धि के नियन्त्रण में रहने के कारण, बुद्धि को प्रभावित करने लगते हैं।

जो बुद्धि, अनुभव करने लगती है कि मुझे इन दसों इन्द्रियों की शक्ति पर पूर्ण नियन्त्रण है-ऐसी बुद्धि का अहंकार 'दशानन' कहलाता है।

हम यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि इन्द्रिय जगत, राक्षस रूपी दस इन्द्रियां और दशानन जैसे रावण-सब, प्रकृति अर्थात् ब्रह्मा की ही देन हैं।

शरीर के अन्दर राम रूपी 'भावातीत क्षेत्र' या 'राम की शक्ति', दूसरे शब्दों में 'पराजगत की शक्ति', ब्रह्मा द्वारा रचे गए इन्द्रिय जगत या इन्द्रिय जगत के राक्षसों को मारकर, कभी भी प्रकृति को समाप्त करना नहीं चाहेगी। राम का लक्ष्य केवल इतना है कि इन्द्रिय जगत के राक्षसों के पास, जो कष्ट पहुंचाने की शक्ति है-उस शक्ति को कैसे नष्ट करे?

हर मनुष्य में एक 'मैं' है। 'मैं' ही दुःखी होता है। 'मैं' ही खुश होता है। माया के दलदल में फंसा हुआ 'मैं', इन्द्रिय सुख की ओर आकर्षित होता है। ऊपर बाह्य

जगत को, इन्द्रिय जगत का मेला बताया गया और; बताया कि मनुष्य - इस मेले का सुख लेते लेते 'अपने घर का रास्ता' भूल गया।

बाहर के संसार में भी हम देखते हैं कि अलग अलग मेलों में अलग अलग तरह के सुख होते हैं।

इन्द्रिय जगत, पांच ज्ञानेन्द्रियों के सुख का मेला है।

यही नरक के सुख हैं।

इन राक्षसों द्वारा पहुंचाए हुए कष्ट के निवारण हेतु, श्रीकृष्ण ने गीता (2.50) द्वारा एक रास्ता दर्शाया-'योगः कर्मसु कौशलम'; योग का अर्थ है-जुड़ना। 'मैं' के पास, इन्द्रिय जगत के अलावा, एक और सुखदायी क्षेत्र है-पराजगत। पराजगत के सुख के भोग हेतु, 'मैं' को आन्तरिक क्षेत्र में विचरण का रास्ता सीखना और जानना पड़ेगा। इस रास्ते पर चलने के अभ्यास द्वारा, 'मैं' का योग-आन्तरिक सुख से हो जाएगा। पराक्षेत्र ही स्वर्ग है। और स्वर्ग के क्षेत्र का सुख-'स्वयं' का सुख है। स्वर्ग का सुख ही, 'राम की शक्ति' है। 'राम की शक्ति', राक्षसों से लड़ने में सक्षम है। योगः का अर्थ है- मनुष्य अपने मन में आनन्द को पिरोकर, बाहर का कर्म करे-यही बाहर के कर्मों में 'कुशलता' का रहस्य है।

मन में आनन्द पिरोते पिरोते मनुष्य, एक आन्तरिक सुखदायी खिंचाव की अनुभूति, कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म करते समय करता है। इस अवस्था को ही भ० गीता (2.48) में कहा गया है-'योगस्थः कुरु कर्माणि'। अर्थात् इन्द्रिय जगत के कर्म करते समय, वह परासुख की अनुभूति कर रहा है-अर्थात् 'राम की शक्ति', उस राक्षस से लड़ने के लिए तैयार है-जो राक्षस कर्मेन्द्रियों द्वारा कार्य के अन्त में ज्ञानेन्द्रियों के सुख के भोग के समय प्रकट होगा।

अब साधक गण भली भांति समझ सकते हैं कि किसी भी मनुष्य का जीवन, 'राम और रावण की लड़ाई' से परे नहीं हो सकता। क्योंकि, यदि जीवन का सुख शून्य हो जाएगा-तो वह आत्महत्या कर लेगा। अर्थात् हर जीवित मनुष्य में सुख का कोई न कोई, अंश होना आवश्यक है। वह योग सम्बन्धित कर्म करे, अथवा न करे-जो योग सम्बन्धित कर्म जागते हुए नहीं करता-उसके जीवन में भी 'परम दयालु, परमपिता स्वरूप आत्मा', उसके

आराम के समय या निद्रा के समय, सेना रूपी आत्मशक्ति प्रवाहित करती ही रहती है-जब तक कि उसके जीवन का दुःख, उसे योग (ध्यान) के रास्ते पर चलाने में सफल न हो जाए।

पुराण हमें दर्शाता है कि पृथ्वी के इतिहास में एक समय ऐसा था-जब किसी भी व्यक्ति की आयु 100 वर्ष से कम की नहीं होती थी। उस समय समाज में आज के युग की भांति, पैसा कमाने की विद्या प्रचलन में नहीं थी-बल्कि 'आत्म जागृति की विद्या' ही समाज में प्रचलित थी।

आत्मा की शक्ति, 'होनी की शक्ति' के रूप में रहती है।

हम आसानी से अनुभव कर सकते हैं कि परा क्षेत्र की समस्त क्रियाएं-जैसे पाचन क्रिया, श्वास का चलना, खून का दौड़ना, मन में हर समय विचारों का आना, इन्द्रियों में शक्ति का भर जाना आदि-किसी 'करनी' के अधीन नहीं हैं। ये सब, मात्र 'होनी' पर निर्भर हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि पराजगत; 'आत्मशक्ति का घर' है। अतः 'आत्म जागृति की विद्या', पराक्षेत्र की चेतना को जागृत करना सिखाएगी।

हर मनुष्य के पास, जन्म से तीन चेतनाएं होती हैं-निद्रा की चेतना, स्वप्न की चेतना और इन्द्रिय जगत की चेतना। इन तीन चेतनाओं के चक्र में फंस जाने वाला मन, समय बीतने के साथ साथ-बढ़ते हुए दुःख अग्रसर करता है। ये तीन चेतनाएं, इन्द्रिय जगत की हैं-क्योंकि इन्द्रिय जगत की हर वस्तु को महसूस करने योग्य मनुष्य, इन चेतनाओं के माध्यम से होता है।

यद्यपि चेतनाएं, मन में ही उभरती हैं और

मन, हमेशा पराजगत में ही रहता है।

इस तरह से बाहर की वस्तुओं को महसूस करने की चेतना भी, अन्दर ही रहती है। परन्तु अध्यात्म की भाषा में, मात्र पराजगत को महसूस कराने वाली चेतनाओं को-दूसरे शब्दों में 'पराजगत का ज्ञान उत्पन्न करने वाली चेतनाओं' को ही; आंतरिक चेतना कहा है। आन्तरिक चेतनाएं, चार स्तर की होती हैं-पहली स्तर की चेतना उभरने के बाद ही; दूसरे स्तर की चेतना उभरती है; जैसे-आज के विद्यालयों में बच्चा, एक कक्षा में पास होने के बाद ही, दूसरी कक्षा में जाता है।

जिस युग की बात ऊपर की गइ है, उस युग में लगभग 8-9 साल का बच्चा **अपने गुरु के साथ अपनी पहली आन्तरिक चेतना के विकास के लिए अपना घर छोड़ कर गुरु के आश्रम में चला जाता था।** अपने गुरुओं की सेवा और अपने गुरुओं के साथ 'पराक्षेत्र में मन के विचरण' का अभ्यास करना ही, इनका धर्म था। लगभग 25 वर्ष की आयु तक इस धर्म का पालन करते थे। फलस्वरूप पराक्षेत्र, जो कि 'ब्रह्म का क्षेत्र' है-दूसरे शब्दों में 'होनी का क्षेत्र' है, में विचरण करने के अनुभव की शक्ति, जागृत कर लेते थे। इसलिए जीवन का यह भाग, 'ब्रह्मचर्य के पालन का जीवन' कहलाता था। इस जीवन की विद्या में, वह जो शक्ति अर्जित करता था-उस शक्ति के साथ गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता था, जिससे इन्द्रिय जगत के कर्म करके इन्द्रिय सुख का भोग कर सके। ऐसी अवस्था में 'परासुख की सुखदायी शक्ति', इन्द्रिय सुख की दुखदायी शक्ति को खत्म करने में सफल होती थी। और गृहस्थ जीवन, हर मनुष्य को संतुष्टि की ओर ले जाता था। यह विद्या भ० गीता (2.50) के अनुसार इन्द्रिय जगत के कर्मों में कुशलता लाती थी और मनुष्य की व्यस्तता धीरे धीरे कम होती थी-ज्ञान बढ़ता था और कम मेहनत में, ज्यादा संतुष्टि का जीवन रहता था।

परिणामस्वरूप, लगभग 50 वर्ष की आयु तक ऐसा जीवन रहने के पश्चात- व्यस्तता कम होते होते, नहीं के बराबर हो जाती थी।

जिस जीवन में व्यस्तता, नहीं के बराबर रहती थी-उस जीवन को 'वानप्रस्थ' कहते थे। इस जीवन में समय आने पर, वह सब कुछ पाने योग्य हो जाता था-

'जो इच्छा करिहौं मन माहीं, हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।'

जो भी व्यक्ति, वानप्रस्थ चेतना में भी 'आन्तरिक जगत में मन के विचरण' का अभ्यास करेगा-उसे लगने लगेगा कि; वही ब्रह्म है। क्योंकि वह तत्काल सब कुछ पाने के योग्य होने लगेगा। इस तरह से लगभग 100 वर्ष की आयु में बालक, पूर्ण आन्तरिक चेतना जागृत करने में सफल हो जाता था-अर्थात् 'ब्रह्मचर्य की चेतना', गृहस्थ की चेतना और वानप्रस्थ की चेतना के बाद, 'अद्वैत की चेतना' को प्राप्त हो जाता था। ❑

किया ध्यान; पाया आराम

✍ श्रीमती ऊषा गर्ग (मो० 09991846415)

विपरीत परिस्थितियां आना - Part of Life.

ध्यान द्वारा निकलना - Art of Life.

जीवन बदल गया; कुछ ही दिनों में।

अभी कुछ दिन पहले मुझे, मेरी बहन (Cousin) का फोन आया-"मुझे पता लगा है कि तुझे उस दवाई का नाम पता है-जो चिकनगुनियां में काम करती है।"

मैंने उसे बता दिया और साथ में ही कुछ और बातें हुई-जिसमें मैंने ध्यान का भी जिक्र कर दिया-जैसे अपनी आदत सी बन गई है।

देखो भगवान् के रंग कि; उसका 3 महीने से चल रही बीमारी-जिससे वह बहुत परेशान थी-ठीक हो गई। अब तो वह आए दिन फोन करने लगी-ध्यान के बारे में पूछती; मैं बता देती। उसको बहुत अच्छा लगने लगा। क्योंकि पिछले 16-17 साल से उसके घर में बहुत Upset सा हो गया था -

> **उसका लड़का जिसको उसने पढ़ा लिखा कर डॉ० बनाया- पहली नौकरी लगी। वह दोस्तों के साथ समुन्द्र पर गया। दोस्त डूबने लगा-वह उसको बचाने के चक्र में, खुद डूब गया और दोस्त बच गया।**

यह सदमा उन पति पत्नी को सहन नहीं हो रहा था। जिससे पति तो ज्यादा और; वह भी तनाव में तो थी ही। ऊपर से बीमारी ने तोड़ दिया-उसका जीवन बदलने का कारण बनी-वह दवाई। आज से छः साल पहले भी हम मिले थे और तीन दिन इकट्ठे भी रहे। उस समय भी मैंने उसको ध्यान के बारे में बताया था - परन्तु शायद उस समय उसका समय नहीं आया। आज वह बात करती है-तो कहती है; "तूने मुझे उस समय जो बताया था-अगर मैं उस समय से आरम्भ कर लेती-तो शायद आज मेरी हालात बहुत बढ़िया हो गई होती।" पर, समय बहुत बलवान् है। अब फोन में बात करती है-वो बताती है कि मेरी जिन्दगी तो काफी बदल गई है-

मुझे तो जीवन जीने का मजा आने लगा है।

"जब भी काम खत्म करती हूं, बस बैठ जाती हूं-ध्यान में। सुबह, शाम और रात को तो बैठती ही हूं। मेरी समस्याएं काफी खत्म हो गई हैं।" उसके पति अभी ध्यान नहीं करते। पर जितना परेशान पहले रहते थे-अब कम हैं। यह-ध्यान करने का फल है। उसकी जिन्दगी बदली-अभी 25 नवम्बर, 2016 के बाद की बात, सिर्फ डेढ़ महीने में ही;

भगवान् का साथ-तो बदलेगा ही जीवन।

इसलिए सभी से प्रार्थना है कि वे ध्यान को अभी से आरम्भ कर दें। ध्यान में करना तो कुछ है नहीं - सिर्फ आंख बन्द करके एक बार भगवान् का नाम मन में लेकर बैठना है। किसी जगह पर बैठो-पर नंगी जमीन से आप का सम्पर्क नहीं होना चाहिए। दिन में तीन बार 30-30 मिनट के लिए। ज्यादा भले ही करो-फायदा ही फायदा।

शब्द कोष में असंख्य शब्द होते हुए भी-'मौन', सबसे बेहतर।

खाने के लिए दुनिया भर की चीजें; उपवास-शरीर के लिए बेहतर।

सलाह देने वाले बहुत है; पर आत्मा की आवाज बेहतर।

पर्यटन के लिए रमणीक स्थल बहुत; पर पेड़ के नीचे ध्यान बेहतर।

खुदा ने उस कौम की हालत न बदली;

जिसे, न फिक्र हो-अपनी हालत बदलने का।

ईश्वर केवल एक है

✍ डॉ० बलदेव राज नाशा

उस मालिक का ध्यान सिखाने के लिए, महापुरुष संसार में आते रहते हैं। कोई भी महापुरुष, अपनी सेवा या पूजा कराना नहीं सिखाता। परन्तु लोग, भूल से उन महापुरुषों को ही ईश्वर मान लेते हैं।

इसलिए अनेक ईश्वर बन गए।

इन अपने अपने ईश्वरों के नाम पर लोग, आपस में लड़ने भिड़ने लग गए। धन,

मकान, जमीन आदि संसारी चीजों का बटवारा हो सकता है-ईश्वर के कभी टुकड़े नहीं हो सकते। फिर भी लोगों ने एक ईश्वर के कई टुकड़े करके, कई ईश्वर बना दिए। राम, कृष्ण, ओऽम्, वाहगुरु, गोड आदि- सब एक ही ईश्वर के नाम हैं। ईश्वर हम सब के भीतर है।

ध्यान द्वारा हम उस ईश्वर को अपने अन्दर अनुभव कर सकते हैं।

किसी कारणवश समाज में आई किसी बुराई को दूर करने के लिए, कोई महापुरुष पूरा प्रयत्न करता है। बाद में लोग, उस महापुरुष के नियमों के, लकीर के फकीर बनकर ही पड़े रहते हैं। आगे बढ़ने का नाम ही नहीं लेते।

गलती से लोग महापुरुषों के कथनों पर नहीं चलते-वे उनकी सेवा, पूजा कर के, स्वयं साधना करना भूल जाते हैं।

कोई भी स्वयं साधना करके ही, अपना कल्याण कर सकता है। महापुरुष, पुजारी, पंडित अथवा विद्वान द्वारा किया हुआ शुभ कर्म, उनका ही कल्याण करेगा-आपका कल्याण तो आप स्वयं ही कर सकते हैं। वे तो केवल आपको, कल्याण का रास्ता बता और समझा सकते हैं।

तेरे अन्दर बैठा राम-सज्जन, तूं दिल विच झांती मार सज्जन।

क्यों वन विच धक्के खांदा एं, क्यों दर दर मत्थे घिसांदा एं?

ध्यान क्यों ?

हर मनुष्य के पास बहुत से जरूरी काम होते हैं।

जरूरी कामों में, ध्यान के लिए समय निकालना आवश्यक है।

प्रश्न उठता है कि क्यों ?

जीवन में हमेशा से दो तरह की शक्तियां देखने को मिलती है;

करने की शक्ति-जो कि मनुष्य की व्यक्तिगत शक्ति है और यह शक्ति, मनुष्य अपनी बुद्धि के विकास और शारीरिक स्वास्थ्य के माध्यम से अर्जित करता है।

होने की शक्ति-यह शक्ति वायुमण्डल में पिरोयी हुई है। इस शक्ति के आधार पर ही हमें पहली व्यक्तिगत शक्ति का फल मिलता है। ज्यों ज्यों 'होने की शक्ति'

जीवन में कम होने लगती है-त्यों त्यों मनुष्य ज्यादा करके भी, कम फल प्राप्त करता है। सारे कार्यों का ध्येय, व्यक्ति विशेष के मन की संतुष्टि होती है। जीवन में केवल वही चीज कम होती जाती है-जिसे बढ़ाने का रास्ता हम छोड़ देते हैं। जो व्यक्ति 'होने की शक्ति' बढ़ाने के लिए बिल्कुल समय नहीं देते-उनके जीवन में 'होने की शक्ति', धीरे धीरे कम हो जाये-यह स्वाभाविक है।

इसलिए अपने मन की संतुष्टि को दोनों ही शक्तियों के माध्यम से प्राप्त करना है। जो व्यक्ति अपने व्यस्त जीवन में, दूसरे कामों के साथ साथ 'होने की शक्ति' बढ़ाने के लिए भी, थोड़ा समय निकालने लग जाते हैं-उनके जीवन में धीरे धीरे दोनों शक्तियां बढ़ने लगती हैं और वे कम क्रियाएं करके भी, अपने मन को अधिक संतुष्ट कर पाने में सफल होने लगते हैं। यह रास्ता ही, 'आत्मोत्थान का रास्ता' कहलाता है। महात्मा का अर्थ यह नहीं है कि; वे अपनी गृहस्थी या अन्य कर्त्तव्यों से मुंह मोड़ लें। महात्माओं की ताकत तो केवल यह है कि वे अपने गृहस्थ जीवन के सारे कर्त्तव्यों को बड़ी आसानी से पूरा कर लें।

अध्यात्म का मूल

जो थोथा अध्यात्म है-वह बाहर के गुणों पर जोर देता है।

अपने को अध्यात्मवादी कहने वाले बहुत से लोग-जीवन को संवारने के लिए, बाहर ही प्रयास करते हैं। वे कहते हैं-ब्रह्मचर्य साधो, दोषों को मिटाओ, सदाचरण अपनाओ, अहिंसा साधो, दया करो, क्षमा करो, सत्य बोलो इत्यादि।

परन्तु ये सब तो परिणाम हैं-इनका मूल तो भीतर ही है।

मनुष्य का जीवन भीतर से बाहर की ओर आता है-बाहर से भीतर की ओर नहीं जाता। जीवन (आचरण, स्वभाव) आता है, भीतर से-फैलता बाहर है। जीवन की ऊर्जा का मूल स्रोत भीतर है और; जीवन की शाखाएं (बाह्य जीवन) बाहर हैं-जिनको शक्ति और रस, भीतर से मिलता है।

इसलिए जीवन को बाहर से अच्छा बनाने के सभी प्रयास अस्थाई रूप से और एक सीमित क्षेत्र तक सफल होते दिखाई देते हैं-पर सफल होते नहीं।

तपस्या, यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत आदि जितने भी श्रेष्ठ कर्म हैं, उनके बल पर परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। सबके सब साधन मिलकर भी; परमात्मा की प्राप्ति नहीं करा सकते। उनसे अपने बल का अभिमान हो सकता है-जो परमात्मा प्राप्ति में बाधक है। बाहर के साधन करते करते-जब साधक को यह पता लग जाता है कि; अपनी सामर्थ्य से कुछ नहीं होगा-तब उसका अभिमान मिटता है। अच्छा बुरा, ठीक या बे ठीक, विधि निषेध; ये सब मनुष्य लोक की मर्यादाएं हैं।

मानव जीवन की सार्थकता, एकमात्र सत्संग (ध्यान) में ही निहित है।

जीवन क्या है ?

मनुष्य के जीवन में केवल दो ही संभावनाएं हैं-काम और आराम।

काम और आराम दो प्रकार के कर्म हैं और इनको समझने के लिए हम एक उदाहरण लेते हैं-जब एक विद्यार्थी को अपनी पढ़ाई स्लेट पर करनी पड़ती है-तब दो तरह के कर्म अनिवार्य हो जाते हैं -

1) स्लेट पर लिखने का कर्म और

2) जो कुछ लिखा है-उसे मिटाने का कर्म।

1. सभी प्राणियों का मन, स्लेट की तरह होता है और बुद्धि के अधीन, जितने कर्म होते हैं-वे स्लेट की बत्ती की तरह होते हैं, जो अपने कर्मों की छाप, मन पर डाल देते हैं-यही 'सकाम कर्म' हैं।

2. वे कर्म, जो बुद्धि की अधीनता से मुक्त होते हैं-मन पर पड़ी हुई छाप मिटाने के लिए होते हैं। ऐसे कर्मों को ही 'निष्काम कर्म' कहते हैं।

प्रत्येक के मन पर इन दो तरह के कर्म होते रहना-यही जीवन है।

ध्यान द्वारा सद्उपयोग

✍ श्री चुरंजी लाल राजपाल (09813251999)

सहज ध्यान द्वारा ही, मनुष्य जीवन का उत्थान होता है। रात्रि को सोने से पहले के 'ध्यान' का फायदा यह है कि नींद बढ़िया आएगी और सारी रात्रि 'ध्यान',

स्वयंमेव बना रहेगा। जब सुबह जागो-तो बढ़िया दिल दिमाग और सारा वातावरण खुशनुमा होगा। प्रातः उठते ही प्रभु में ध्यान, सहज से लग जाएगा। आप कहेंगे कि रात्रि में अच्छी नींद आई, मुझे कुछ भी पता नहीं लगा और खूब आनन्द आया।

कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि; ध्यान में किसका नाम लें? तब मैंने डॉ० शम्भू नाथ जी द्वारा बताई हुई बात कहीं-आप जिस इष्ट देव को मानते हो, उसी का नाम एक बार सोचकर, आंख बन्द करके कुचालक पर बैठो। जैसी आपकी सहुलियत हो-चाहे कुर्सी पर बैठो, पलंग पर, धरती पर आसन बिछा कर या तखत पर अन्धेरे में बैठो।

यह 'करनी' का मार्ग है-'कथनी' का नहीं।

कुचालक पर बैठो, अन्यथा ऊर्जा- (ध्यान की शक्ति) Earth हो जाएगी।

'ध्यान' की तीन अवस्थाएं होती हैं :-

1. प्रथम चरण में आंख बन्द करके बैठना होता है। मन को स्वतंत्र छोड़ दें-जो होता है, होने दें। स्वयं, बाधा न बनें।

2. ध्यान का साधक, जब उन्नति करके आगे बढ़ेगा-तो आधी आंख बन्द और आधी खुली-ऐसे कई महापुरुषों को आपने देखा होगा-जैसे महात्मा बुद्ध और गुरुनानक देव जी।

3. जब आप का 'ध्यान', पूर्ण 'समाधि' में परिवर्तित हो जाएगा-

तब ध्यान की ऊंची उड़ान में कह उठोगे

'हंस हंस दर्श पाऊं।'

प्रकृति का स्वभाव

✍ श्रीमती अनु जैन (भिवानी)

ईश्वर के द्वारा बनाई प्रकृति की छत्रछाया में मनुष्य अपना जीवन सुखपूर्वक बिता सकता है। किन्तु अफसोस। प्रकृति के निकट रहते हुए भी मनुष्य दुखी है; क्यों ? क्योंकि उसने अपने झूठे अहंकार के कारण स्वयं को प्रकृति के ऊपर स्थापित करने का दुस्साहस किया है। उसने प्रकृति के नियमों से और उसके

स्वभाव से कोई सीख नहीं ली है। आज भी यदि हम प्रकृति को शान्त चित्त होकर समझने का प्रयास करें; तो हमारा जीवन सुखी हो सकता है।

प्रकृति हमारी माता है। कोई भी माँ बच्चे को दुखी नहीं देखना चाहती। यदि बच्चा दुखी है-तो इसलिए कि उसने माँ के नियमों को तोड़ा है। अनुशासन का उल्लंघन किया है। प्रकृति में किसी भी चीज़ की कमी नहीं है: अनन्त ऊर्जा है, सहज कार्यशैली है, परस्पर तालमेल है, निस्वार्थता है, प्रेम है और इसके मूल में काम कर रहे हैं – देने के नियम :-

Nature blossoms : जिस प्रकार प्रकृति में फूल खिलते हैं- उसी प्रकार 'ध्यान' द्वारा व्यक्ति के अन्दर पड़ी हुई सभी समस्याएं व ग्रन्थियां खुलकर, मनुष्य फूल की तरह खिल कर तरो ताज़ा हो जाता है एवं उसके द्वारा किए हुए कर्म भी, संसार में महक उठते हैं।

Nature garners : प्रकृति शक्तियों का भण्डार है – 'ध्यान' के द्वारा मनुष्य अपने अन्दर अनन्त शक्तियों को उत्पन्न कर सकता है। 'ध्यान' करते हुए मनुष्य परमात्मा के क्षेत्र में कर्म करता है। परमात्मा-सर्वसम्पन्न होने के कारण, सम्पन्नता मनुष्य के मन में समा जाती है। जिससे कि मन, जिस क्षेत्र में कर्म करेगा – उस क्षेत्र में मनुष्य अनन्त सफलता प्राप्त कर लेगा।

Nature protects : प्रकृति संसार के अनेक दु:खों से बचाव करती है। मनुष्य के अन्दर विचार व बीमारियों के रूप में अनेकों प्रकार का कूड़ा कचरा, कई जन्मों का भरा पड़ा रहता है – जिस को निकालना बड़ा कठिन कार्य है। लेकिन 'ध्यान का लगातार अभ्यास' (Meditation) करते हुए मनुष्य इन सभी प्रकार के दु:खों व बीमारियों से सहज ही छुटकारा पा सकता है।

Nature heals : प्रकृति स्वयं ही जिस प्रकार जख्मों को भरने का कार्य करती है: उसी प्रकार मनुष्य के अन्दर अनेकों प्रकार के अहं के विचार भरे पड़े रहते हैं। जैसे ही कोई विपरीत परिस्थिति मनुष्य के जीवन में आती है: तो वह टूटने लगता है। लेकिन ध्यान द्वारा किसी भी विपरीत परिस्थिति से निपटने की हिम्मत, आप के अन्दर पैदा हो ही जाती है और जीवन में दु:ख के नामो निशान समाप्त होने लग जाते हैं।

Nature makes dreams come true.

ध्यान माला दोहा-58 में श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर' के अनुसार :-

ध्यान खींच कर जब उसे, उद्रम थल ले जाय।

मात्र सोचना फलित हो, पूर्णकाम हो जाय॥

ध्यान के नियमित अभ्यास द्वारा हमारे मन का चेत स्तर, धीरे धीरे भावों के उद्रम स्थल की ओर-अर्थात् भावातीत क्षेत्र (Transcendental Field) के निकट होता जाता है और उनकी मूर्त रूप धारण करने की और फलित होने की शक्ति बढ़ती जाती है। ध्यान के दीर्घकालीन अभ्यास (Meditation) के बाद जब चेत स्तर, भावों के उद्रम स्थान पर पहुंच जाती है – तब उसे भावातीत क्षेत्र की असीम शक्ति उपलब्ध हो जाती है और तब भावों का अनुभव होना मात्र – अर्थात् उनका सोचना मात्र, उन भावों को फलित कर देता है। चूंकि इस अवस्था को प्राप्त व्यक्ति की सभी इच्छाएं, मात्र सोचने से पूर्ण हो जाती हैं – अत: उसके मन में इच्छाओं की उथल पुथल नहीं होती और जब कोई इच्छा उत्पन्न होती है-वह स्वयंमेव पूर्ण हो जाती है। इसलिये ऐसे व्यक्तियों को 'पूर्णकाम' कहा जाता है।❑

मन और तन

—प्रस्तुति : श्री सतनारायण शर्मा (09416164702)

मन पराजगत का निवासी है;

यह मन सगुण निराकार है।

पराजगत का यह सगुण निराकार अस्तित्व, मन कहलाता है।

मन में सारे संसार को महसूस करने की शक्ति है।

महसूस करने की शक्ति; इस पर निर्भर करेगी कि मन में कितना ब्रह्मतत्व पिरो चुका है? ज्यों ज्यों ब्रह्मतत्व का पिरोना बढ़ेगा-त्यों त्यों मन की अनुभव शक्ति बढ़ेगी, या यह कहें कि 'मन का अनुभव क्षेत्र' बढ़ेगा। ब्रह्माण्ड या पिंड में, सब कुछ अनुभव करने की शक्ति, मन में – 'मन के विचरण' के आधार पर उत्पन्न हो जाती है।

सगुण मन ही; जीवात्मा है। इन्द्रिय जगत में स्वेच्छा से कर्म करने के लिए जीवात्मा को शरीर धारण करना अनिवार्य है। स्वेच्छा से कर्म करने की शक्ति, समस्त जीवों में सबसे अधिक, मनुष्य में है।

इन्द्रिय जगत के देवताओं के कर्मों की ओर जब हमारा ध्यान जाता है-तो हम अनुभव करते हैं कि उनके 'कर्म क्षेत्र' बहुत ही विशाल हैं। गणना के क्षेत्र में भले ही कोई वैज्ञानिक इन कर्म क्षेत्रों को सीमाओं में बांधने में सफल हो जाए-परन्तु अनुभव के क्षेत्र में तो इनके कर्म क्षेत्र अनन्त ही हैं। अनन्त क्षेत्र में कर्म करने वाले देवताओं को स्वेच्छा से कर्म करने की शक्ति नहीं है। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, आकाश और पवन देव आदि अपने निमित्त कर्मों से बंधे हैं। मात्र मनुष्य के तन को पाने वाला मन-इच्छाओं के किसी भी क्षेत्र में कर्म करके, अपनी किसी भी इच्छा की पूर्ति कर सकता है। क्योंकि पुराण हमें दर्शाते हैं कि -

सकल पदार्थ हैं, जग माहीं।

कर्महीन नर, पावत नाहीं॥

कर्म से उस क्षेत्र की चेतना उभरती है-जिस क्षेत्र में कर्म होता है - उसी चेतना में कर्म क्षेत्र का सम्पूर्ण ज्ञान रहता है। मात्र ज्ञान द्वारा सब कुछ पा जाने की शक्ति, मन में उत्पन्न हो जाती है।

जीवन, दो क्षेत्रों में बंटा है - शरीर के अन्दर और शरीर के बाहर।

जो कुछ शरीर के अन्दर होता है-उसे पिण्ड कहते हैं और

जो कुछ शरीर के बाहर होता है, उसे ब्रह्माण्ड कहते हैं-

पुराण दर्शाते हैं कि -"यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे"।

अलग अलग मनुष्यों के शरीर के बाहर का जीवन, भिन्न भिन्न होता है। यह इस पर निर्भर करता है कि उसके शरीर के अन्दर जो मन विराजमान है; उसकी अवस्था कैसी है? मन, विचारों के समुद्र में है और विचारों से परे का क्षेत्र, 'ब्रह्मतत्व का समुद्र' है। जब मन, ब्रह्मतत्व के सागर में स्नान करता है-तब कुछ ब्रह्मतत्व, मन में अवश्य पिरोता है। मन शरीर में स्थापित सारे पुर्जों में, आवश्यकता अनुसार ब्रह्मतत्व पिरोता है-जिससे शरीर का पालन पोषण हो सके।

मन में पिरोए हुए ब्रह्मतत्व की अवस्था, समय बदलने के साथ साथ बदलती रहती है। जिस मन की जैसी अवस्था रहती है-उसके आधार पर उसके इन्द्रिय जगत का जीवन वैसा हो जाता है।

सभी प्राणियों का मन, शरीर के अन्दर और शरीर के बाहर, समय बिताने हेतु कम-से-कम दो तरह की जागृति को नित्य प्राप्त हो जाते हैं-निद्रा और इन्द्रिय जगत की जागृति। निद्रा के समय, मन ब्रह्मतत्व के सागर में स्नान करके अधिक-से-अधिक ब्रह्मतत्व अपने में पिरो लेता है। ब्रह्मतत्व पिरोने से मन में, ब्रह्मतत्व के गुण उभर आते हैं।

जागृति; ब्रह्मतत्व के गुणों में एक गुण है-सोते सोते प्राणी जागृति की ओर अग्रसर होने लगता है। मन में ब्रह्मतत्व पिरोने का कर्म, प्राणी के आन्तरिक जगत का कर्म है। जब वह इन्द्रिय जगत की जागृति को प्राप्त हो जाता है-तब मनुष्य को छोड़ कर सारे प्राणी, आन्तरिक जगत में कर्म करना बन्द कर देते हैं। इन्द्रिय जगत में तब तक कर्म करते रहते हैं-जब तक आन्तरिक जगत के कर्मों द्वारा प्राप्त इन्द्रिय जगत की जागृति, व्यय हो जाने के कारण-निद्रा को प्राप्त न हो जाए।

मात्र मनुष्यों में दो प्रकार के प्राणी पाए जाते हैं।

एक वे, जो उपरोक्त प्राणियों की भांति इन्द्रिय जगत की जागृति को प्राप्त होने के पश्चात् मात्र इन्द्रिय जगत के कर्मों में तब तक व्यस्त रहते हैं-जब तक निद्रा के समय आन्तरिक जगत में होने वाले कर्म हेतु अर्जित शक्ति, पूर्णतया व्यय न हो जाए। ऐसे मनुष्य पशु से ऊपर, मात्र बौद्धिक शक्ति के कारण माने जाते हैं। पशुओं की बुद्धि का विकास, इतना नहीं हो सकता-जितना मनुष्यों की बुद्धि का विकास हो सकता है।

मनुष्य में एक और गुण है-जो पशुओं में नहीं है।

मात्र मनुष्य, इन्द्रिय जगत की जागृति की अवस्था में, स्वेच्छा से जब चाहे-तब आंतरिक क्षेत्र में विचरण करने के कर्म में आने योग्य है। जब वे इन्द्रिय जगत की जागृति को प्राप्त हो जाते हैं-तब वे दो तरह के कर्मों में आ जाते हैं-इन्द्रिय जगत के कर्म और आन्तरिक जगत के कर्म। ऐसे व्यक्ति के कर्म पहली श्रेणी वाले

व्यक्तियों से श्रेष्ठ होते हैं।

प्रकृति-हर मनुष्य को मन, बुद्धि और शरीर प्रदान करती है।

जो मनुष्य इन तीन 'प्राकृतिक धरोहरों' का पालन पोषण करने में अधिक सफल है-मात्र वह व्यक्ति महान है। मात्र उसी के बाहर का जीवन अधिक अच्छा होता है। किस मनुष्य का जीवन श्रेष्ठ है-यह देखने की शक्ति, नेत्रों में नहीं होती। समझने की शक्ति, सीमित बुद्धि में भी नहीं होती। सत्य यह है कि इस सत्य (असीम) को जानने की शक्ति, मात्र चेतना में होती है।

चेतना का विकास, कर्म और कर्मक्षेत्र पर निर्भर करता है।

पहली श्रेणी का व्यक्ति, मात्र इन्द्रिय जगत के अलग अलग विषयों में काम करता है। अतः किसी व्यक्ति में किसी विषय के क्षेत्र की चेतना जागृत हो जाती है और किसी और व्यकित की, किसी दूसरे विषय के क्षेत्र की चेतना जागृत हो जाती है। इस तरह से पहली श्रेणी के अलग अलग व्यक्तियों की चेतना, मात्र इन्द्रिय जगत के अलग अलग विषयों की चेतना होती है और इन चेतनाओं में मात्र विषयों का ही ज्ञान होता है। अर्थात् हम इन चेतनाओं के माध्यम से मात्र विषयों को जानने में सक्षम होते हैं।

दूसरी श्रेणी के व्यक्ति इन्द्रिय जगत में कर्म करने के साथ साथ आन्तरिक जगत में भी कर्म करते हैं। अतः इनमें दो तरह की चेतना का विकास साथ साथ होने लगता है - विषयों की चेतना और आन्तरिक चेतना। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिलेगा-जो यह कहे कि आन्तरिक जगत, बाह्य जगत से स्थूल है। सभी मानते हैं कि आन्तरिक जगत, ज्यादा सूक्ष्म है। जिस प्रकार, जिसके नेत्रों के देखने की शक्ति ज्यादा है; मात्र वही सूक्ष्म-से-सूक्ष्म लिखाई को पढ़ सकता है। जिसके नेत्रों में देखने की शक्ति कम है-वह भी स्थूल अक्षर तो पढ़ ही लेता है।

जो मनुष्य सूक्ष्म क्षेत्र के कर्मों के अभ्यास द्वारा, सूक्ष्म क्षेत्र की जागृति पैदा कर लेता है-उसकी चेतना प्रथम श्रेणी वाले व्यक्तियों की चेतना से उच्च स्तर की चेतना होती है। ऐसी चेतनाओं में, जो ज्ञान उपजता है-वह ज्ञान भी ज्यादा उच्च श्रेणी का होता है।

किस मनुष्य का जीवन श्रेष्ठ है?

यह देखने और समझने की शक्ति, आन्तरिक चेतना को प्राप्त हुए व्यक्तियों में अधिक है। शास्त्र भी यही दर्शाता है कि मात्र तीसरे चेतना को प्राप्त व्यक्ति, ज्ञानी है-अर्थात् इन्द्रिय जगत को प्राप्त व्यक्ति तो माया के दल दल में ही फंसा रहता है।

माया के दलदल से बाहर आने की शक्ति, मात्र आन्तरिक चेतना में है।

समाज में तीन चेतना को प्राप्त व्यक्ति ही, एक साधारण मनुष्य है। वह जो कुछ भी देखता या सुनता है-सच है या झूठ है, समझने योग्य वह नहीं है।

बाह्य जगत की सत्यता को समझने की शक्ति, चौथी चेतना से आरंभ होती है। ज्यों ज्यों मनुष्य; और उच्च स्तर की आन्तरिक चेतना को प्राप्त होने लगता है-त्यों त्यों वह जीवन सत्य की, मात्र चेतना के विकास के आधार पर-अनुभव करने लग जाता है।

सब कुछ कर्म की देन है।

आन्तरिक क्षेत्र का कर्म ही; आन्तरिक क्षेत्र की चेतना का विकास करके, आन्तरिक जगत का ज्ञान देकर बाह्य जग का जीवन संवार देगा। मनुष्य का जीवन, मात्र उसके ज्ञान से जुड़ा है। ज्ञान, यदि विषयों का है और जीवन का नहीं है-तो वह किसी विशेष विषय का ही ज्ञानी हो सकता है।

श्रेष्ठ से श्रेष्ठ जीवन का ज्ञान उसे कैसे मिल सकता है?

ज्यों ज्यों आन्तरिक चेतना का विकास होगा-उसकी उभरती हुयी चेतना में यह ज्ञान उभरता ही रहेगा कि; वह अपने जीवन को और श्रेष्ठ कैसे बनाए?

यही स्वाध्याय है-या अपने अध्ययन का रास्ता है।

मात्र अपने अध्ययन के रास्ते पर चलकर मनुष्य, अपने को जानने लगेगा। पृथ्वीलोक कर्मलोक है। यहां जीवात्माएं शरीर धारण करके, कर्म करने हेतु जन्म लेती हैं और अगले जन्म में उच्च स्तर का जीवन देने वाले शरीर को प्राप्त हो जाती हैं। इस प्रकार मात्र शरीर के आधार पर, हम अलग अलग स्तर का कर्म करने योग्य हो जाते हैं।

मात्र मनुष्यों में भी; हर मन के तन की अवस्था भिन्न है। इसे बौद्धिक स्तर पर समझना असम्भव है। बौद्धिक स्तर पर रहने वाले व्यक्ति को प्रतीत होता है

कि सभी का तन एक ही हाड मांस का बना है।

इस जन्म में हम जैसे कर्म करेंगे-वैसा ही हमारा जीवन होगा। सत्य यह है कि इस जन्म में प्राप्त तन तो पिछले कर्मों की देन है। जैसा कर्म - वैसी चेतना। अर्थात् पिछले कर्मों द्वारा प्राप्त चेतना से ही, इस जन्म में तन प्राप्त हुआ है। अतः यह तन, कुछ विशेष तरह के कर्मों के लिए उपयुक्त है। यह तन, हर तरह के कर्म के लिए उपयुक्त नहीं होता। इन्द्रिय जगत का हर कर्म, हर व्यक्ति के लिए उपयुक्त नहीं है। परन्तु हर मनुष्य, दोनों क्षेत्र में कर्म करने योग्य है। जो दोनों क्षेत्र में कर्म करेगा-उसका शरीर इस जन्म में भी इस प्रकार से बदलेगा कि वह; और उच्च आन्तरिक चेतना उत्पन्न करने वाले कर्म कर सके। इस तरह हम समझ सकते हैं कि हमारे आन्तरिक क्षेत्र में कर्म हमें; और उच्च स्तर की चेतना प्रदान करेंगे। यह उच्च स्तर की चेतना, हमारे तन में परिवर्तन लाएगी- जिससे तन में रहकर जीवात्मा; और उच्च स्तर का कर्म करने में सफल हो। यदि मनुष्य, इसी जीवन में पूर्ण चेतना नहीं प्राप्त करता-तो भी अगले जीवन में उसका शरीर; और उच्च स्तर का होगा-जिससे वह बचपन में ही सर्वश्रेष्ठ कर्मों में आ सके। शंकराचार्य, परमहंस, विवेकानन्द, गौतम बुद्ध, प्रह्लाद आदि व्यक्तियों के तन, साधारण व्यक्तियों के तन से भिन्न होने के कारण ही; अपने आन्तरिक जगत की शक्ति को बाह्य जगत में प्रवाहित करने में बाल अवस्था से ही सफल हो गए।

ईश्वर (परमात्मा या ब्रह्म) तो सर्वव्यापी है।

यही हमें बताता है कि; ईश्वर हमसे अलग कैसे हो सकता है? केवल जो कुछ हमसे अलग होता है-उसे ही हम प्रयत्न करके पाते हैं। अलग का अर्थ है-शरीर के बाहर। जो अलग है-वह सर्वव्यापी नहीं है। जो अलग नहीं है-वह शरीर में है। जो मेरे शरीर में है-वह सारे प्राणियों के शरीर में है-चाहे वह मनुष्य हो, पशु हो, पक्षी हो या जलचर अथवा थलचर हो।

जो अपने में है-उसे पाने के लिए, अपने में जाना है।

अपने में जाने को ही; आराम कहते हैं-यही आराम (Relax) की परिभाषा है। मन, इन्द्रिय जगत में आए-यही बाहर आना है-यह परिश्रम है-यही पाने का रास्ता है। इसलिए लेखक का कथन है कि

ईश्वर पाने की चीज नहीं है-केवल जानने की चीज है।

अपने को जानने के लिए, अपना अध्ययन (स्वाध्याय) या अपने में विचरण-अनिवार्य है। ज्यों ज्यों हम अपने को जानेंगे - धीरे धीरे हमें सब कुछ मिलना आरम्भ हो जाएगा। इसके विपरीत, हम जितना ज्यादा समय ऐसी वस्तुओं को पाने में नष्ट करेंगे-जो शरीर के बाहर है-त्यों त्यों हम अपने को जानने के बजाय, भूलने लगेंगे और ज्यों ज्यों अपने को भूलने लगेंगे-हमारा जीवन ऐसा होगा कि परिश्रम बढ़ेगा और मिलना, कम हो जाएगा।

इसके विपरीत अपने को जानने के रास्ते पर विश्राम बढ़ेगा और; मिलना भी बढ़ेगा। ऐसा रास्ता ही अध्यात्म का रास्ता है। क्योंकि शरीर के अन्दर का क्षेत्र ही; 'आत्मा का क्षेत्र' है।

ऊपर हमने देखा कि चेतना, मन की शक्ति है। यदि चेतना ऊंची है-तो मन शक्तिशाली है। जैसी चेतना-वैसी संसार को अनुभव करने की शक्ति। जैसी अनुभव शक्ति-वैसा ज्ञान। जो जितना ही बड़ा ज्ञानी है-उसकी समझ उतनी ही गलतफहमियों से दूर है।

यह बिल्कुल गलत है कि; जैसी समझ की शक्ति-वैसा ज्ञान।

विषयों का ज्ञान रखने वालों को अधिकतर जीवन का ज्ञान नहीं होता-उनके अन्दर मात्र विषयों को समझने की शक्ति रहती है। आन्तरिक चेतना का विकास करने वालों में, जीवन से सम्बन्धित सभी ज्ञान होते हैं। इसलिए उनका जीवन अतिश्रेष्ठ होता है-भले ही; उन्हें किसी विषय का विशेष ज्ञान न हो।

जीवन सम्बन्धित ज्ञान, मनुष्य को उस भोजन का स्वभाव देता है-जिस भोजन के साथ, उसका आत्मोत्थान होता रहे। अर्थात् मन ही; भोजन बदलने वाला बन जाये-इसकी बजाय कि भोजन, मन को बदले।

साधकगण असमंजस में पड़ जाएंगे कि; क्या सही है और क्या गलत है? प्रकृति का नियम तो मात्र इतना है कि; जब दो अस्तित्व एक दूसरे के सम्पर्क में आएं-तो शक्तिशाली अस्तित्व, शक्तिहीन अस्तित्व पर अपना प्रभाव डाले।

आत्मोत्थान के रास्ते पर मन, शक्तिशाली होता जाता है।

परिणामस्वरूप भोजन, मन पर अपना प्रभाव डालने में असमर्थ होने लगता है।

ऐसे व्यक्तियों पर प्रचलित कहावत –

'जैसा खाए अन्न वैसा होय मन', गलत साबित होने लगता है।

ध्यान

—श्री गणि राजेन्द्र विजय

धर्म का सार-संक्षिप्त सूत्र है-स्वयं को जानो।

स्वयं को जाने बिना व्यक्तित्व विकास संभव नहीं होगा।

यह सब ध्यान से संभव हो पाता है।

ध्यान, साधना का प्रथम चरण व अंतिम सोपान भी है।

भगवान महावीर का मार्ग, संकल्प का मार्ग है-

तप, त्याग और साधना का मार्ग है।

अहिंसा से व्यक्ति संयमित होता है।

महावीर ने तप के महत्व का भी वर्णन किया है।

तप की परम अवस्था कायोत्सर्ग को बताया है

और कायोत्सर्ग की स्थिति तक पहुंचने का मार्ग है – ध्यान।

ध्यान से ही काया का उत्सर्ग हो सकता है।

ध्यान से ही बाह्य उपाधियों के प्रति ममत्व भाव का त्याग हो सकता है। इसलिए ध्यान कारण है – कायोत्सर्ग का और कायोत्सर्ग कारण है – मोक्ष का। जो साधना, जीवात्मा को मोक्ष से जोड़ती है – वह साधना भी 'योग' ही कहलाती है।

पतंजलि ने योग के आठ अंग बताए हैं-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान ओर समाधि।

जो साधना ज्ञान दर्शन चारित्रमय है-वह मोक्ष का साधन है।

उसे योग भी कहते है। आत्मा का ज्ञान होने से ही मुक्ति होती है, किंतु वह ज्ञान, योग के बिना नहीं होता। ध्यान, 'देह धर्मी शक्तियों' द्वारा भौतिकता का अतिक्रमण नहीं,

बल्कि ''अध्यात्म धर्मी मानसिकता'' का तत्वान्वेषण है।

ध्यान, आंतरिक गुणवत्ता है, आत्मसत्ता की प्रतीति है –

ध्यान संपूर्ण अस्मिता और सत्ता की गति के अन्वेषण का प्रारंभिक बिंदु है। ध्यान के लिए मानसिक पारदर्शिता, मन की गंभीरता और चित्त की अविकलता अनिवार्य है।

ऐसी अविकल अवस्था में प्रज्ञा स्वतः निर्मल दर्पण बनकर

आभास बिंब प्रस्तुत करने लगती है।

वह अपनी कल्पना शक्ति, अनुभव शक्ति और चिंतन शक्ति को ऐसे मानसिक धरातल पर प्रतिष्ठित करती है – जो चिर शांत और प्रवाह युक्त हो।

ध्यान, वस्तुतः मानसिक एकांत है।

इसकी भाषा चिरंतन मौन है।

इसकी अभिव्यंजना के लिए माया के सारे रूपक बिंब अक्षम हो जाते हैं, किंतु यह सत्य है कि प्रत्येक स्वस्थ मानसिकता वाले व्यक्ति में 'ध्यान की अल्पाधिक क्षमता' होती ही है। वह कोई अलौकिकता युक्त हठयोगियों या सिद्धों की उपलब्धि नहीं है। सामन्यतः व्यक्ति द्वंद्व में जीता है। एक ओर तो उसका मन, आदर्श की ऊंचाइयों में विचरण करता है-तो दूसरी ओर वह वासना के व्यामोह में फंसा रहता है। आदर्श में व्यक्ति स्वयं को अंतरिक्ष में विचरण करता हुआ पाता है, किंतु वास्तव में देखता है-तो पता चलता है कि वह तो अभी धरातल पर ही है। ❑

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-32 : करे साधना बुद्धि – तन, 'कर्मकाण्ड' बहिरंग।

ध्यान सहित जो मन करे, है 'उपासना' ढंग॥

बुद्धि और शरीर द्वारा साधना, बहिर्मुखी-कर्मकांड होती है। 'ध्यान' में जो साधना मन से होती है-वह अंतर्मुखी 'उपासना कांड' होती है। बुद्धि के नियंत्रण में-अर्थात् खंड की शक्तियों के बौद्धिक ज्ञान द्वारा उचित और लाभकर

समझ कर, सकाम भाव से कर्म करना–'कर्मकाण्ड' की साधना है।

ध्यान के नियमित अभ्यास (Meditation) **द्वारा** जिसका मन, ब्रह्म तत्व से सम्पर्क करता रहता है और ध्यान के बाद, जो बाह्य जगत में स्वाभाविक क्रिया करने की ओर उन्मुख रहता है–ऐसी साधना को 'उपासना' कहते हैं।

कर्मकाण्ड व्यक्ति बहिर्मुखी रहता है और उपासना में अन्तर्मुखी होने लगता है।

दोहा–33 : 'आनंद' सुख को जीत कर, अन्तर्मुख ले जाय।

'ज्ञानकाण्ड' की साधना, होती सहज सुभाय॥

'आनन्द', मन को बाहर के सुखों से हटाकर, मन को अन्दर ले जाता है। ध्यान की सहज स्वाभाविक साधना, 'ज्ञान कांड' होती है। कर्मकाण्ड की साधना से केवल बाह्य सुख मिलते हैं–जो अन्त में दुखद हो जाते हैं।

'उपासनाकाण्ड' की ब्रह्म सुख (आनन्द) विकसित करने वाली साधना, अन्तर्मुखी और प्रयासहीन है।

उपासना की साधना अधिक प्रगाढ़ होने पर, साधक ऐसी अवस्था में पहुंच जाता है–जब भीतर के आनन्द और बाहर के सुख में मन को अपनी अपनी ओर खींचने की खींचा तानी होने लगती है। साधक, अगर साधना में लगा रहा–तो आनन्द (Bliss), धीरे धीरे सुख (Pleasure) से जीतने लगता है और साधक, अधिक समय तक अन्तर्मुखी रहने लगता है। इस साधना में, और प्रगति होने पर स्वयं आनन्द (ब्रह्म), साधक से साधना कराने लगता है। साधक को सोचकर और समय निकाल कर, साधना नहीं करनी पड़ती। साधक, पूर्ण रूप से प्रयासहीन अवस्था में उच्च स्तर की साधना में अग्रसर हो जाता है। यही 'ज्ञानकाण्ड की साधना' की अवस्था है।

दोहा–34 : अगर बुद्धि औचित्य ही, हो साधन आधार।

सदा द्वैत में ही रहे, अति दुस्तर निस्तार॥

यदि केवल बुद्धि के ठीक समझने पर काम करते हैं–तो सदा द्वैत में ही रहेंगे

और कल्याण भी नहीं होगा। बुद्धि, जिसे उचित समझे–उसे करना और जिसे अनुचित समझे–उसे न करना ही; यदि साधना का आधार होगा– तो बुद्धि के नियंत्रण में किये गये ऐसे सभी कार्य, द्वैत के क्षेत्र में ही होंगे और वे कार्य, अद्वैत तत्व (ब्रह्म या भगवान की शक्ति) प्राप्ति में तनिक भी सहायक नहीं होंगे। इसीलिये इस प्रकार की साधना से, साधक का कल्याण नहीं होता।

दोहा–35 : सोच–समझ जो कर रहे, 'मैं' का है अरु खण्ड।

जो बिन 'मैं' के हो रहा, उसमें घुला अखण्ड॥

जो काम बुद्धि से सोच समझ कर होता है–उसमें 'मैं' अथवा 'अहंकार' होता है–अतः लाभ थोड़ा होता है। जो काम बिना 'मैं' के होता है–उसमें 'अखण्ड' (भरपूर सुख) घुला होता है। जब तक व्यक्ति किसी विषय को समझ कर और उस पर विचार करके कोई काम करता है–तब तक बाह्य जगत की चेतना ही सक्रिय रहती है। दूसरे शब्दों में उसका 'मैं' अथवा 'अहं', उसके मूल में उपस्थित रहता है और उसे केवल 'अखण्ड की शक्तियां' ही प्राप्त होती हैं।

इसी को 'बुद्धि नियंत्रित जीवन' कहते हैं।

लेकिन जिसके कर्म, मन के माध्यम से 'आत्मा की शक्ति' द्वारा प्रेरित होते हैं–उसे क्रिया करने के पूर्व, कुछ भी पढ़ सुन कर समझना और बुद्धि से विचार नहीं करना पड़ता। उसके कार्य, बाह्य चेतना के 'मैं' की –अर्थात् 'अहं' की अनुपस्थिति में होते हैं और; ऐसे लोगों का जीवन ही धीरे धीरे, और अधिक सुखी होता जाता है।

दोहा–36 : अहित छोड़ हित 'मैं' करे, गगन–कुसुम की बात।

हित है केवल ब्रह्म से, प्रकट ध्यान से तात॥

'मैं' की उपस्थिति में कल्याण होना असम्भव है। केवल 'ब्रह्म की शक्ति' ही कल्याण करती है। यह शक्ति, ध्यान के अभ्यास से प्रकट होती है। जब ध्यान के नियमित अभ्यास से भगवान हमारे जीवन में सक्रिय होने लगता है–तब धीरे धीरे जीवन में उसके गुण–सत्, चित् और आनन्द बढ़ने लगते हैं–अर्थात् बाह्य चेतना का 'मैं' गलने लगता है। यह 'मैं' ही, मनुष्य के सभी दुःखों का कारण है।

इस 'मैं' की उपस्थिति में मनुष्य का कल्याण, आकाश कुसुम के समान असंभव है। वास्तव में 'ब्रह्म की शक्ति' ही, मनुष्य का कल्याण करती है-जो ध्यान के नियमित अभ्यास से प्राप्त होती है। ❑

नोट : 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 50/- (पचास) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश; अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

-**श्री राकेश गर्ग,** केशव लैस इम्पोरियम,
दुकान नं० 91, लाजपतराय (रेहड़ी) मार्केट, हिसार-125001
मोबाईल : 098967-89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर, नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार के जपकक्ष में प्रात: 11.00 बजे से 12.30 बजे एवं प्रतिदिन सायं 4 से 5 बजे सामुहिक ध्यान प्रयोगात्मक (Practical) और उसी मन्दिर में प्रति रविवार पारिवारिक ध्यान सत्संग सायं 4 बजे से सायं 6 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

-**सुरेश कुमार गुप्ता**
1618, अर्बन स्टेट-2, हिसार-125005
E-mail : sureshgupta1936@gmail.com

PRINTED MATTER